अनुपम गुणों के धारक : आचार्य श्री

डॉ. सरोज कोचर
अध्यक्ष
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

जब जब धर्म की ह्रास और अधर्म में वृद्धि होती है तब-तब धर्म के अभ्युत्थान हेतु महापुरुषों का जन्म होता है। धर्म के ह्रास की इसी श्रृंखला में जब गुजरात के परमार क्षत्रियों में हिंसा का बोलबाला था, जुआ, मदिरा, शिकार, आदि का उपयोग जनजीवन में व्याप्त था, आपसी कलह, द्वेष, बेमेल विवाह, बालविवाह, आदि कुरीतियाँ जीवन के पर्याय बन गयी थी तब अपनी महानता, दिव्यता और भव्यता से जन-जन के अंतर्मानस को अभिनव आलोक से आलोकित करने हेतु अहिंसा के मसीहा के रूप में सन् 1923 में गुजरात के सालपुरा ग्राम में पिता श्री रणछोड भाई एवं माता श्रीमती बालू बेन के घर आँगन को अपने जन्म से एक शिशु ने अलंकृत किया। यही शिशु रूप मोहन अपने संयम जीवन में आने वाली अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए परमार क्षत्रिय वंश के आद्य जैन मुनि श्री इन्द्रविजय जी महाराज बना।

अपने संयम जीवन के आठवें वर्ष में शान्ति के अभिलाषी, कलिकाल कल्पतरु, युगवीर पंजाब केसरी आचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी म.सा. के पावन सान्निध्य में नव जीवन के साथ नई दृष्टि, नई दिशा प्राप्त हुई। परम पूज्य आचार्य श्री जी की छत्र छाया में इन्होंने आगमों, संस्कृत, प्राकृत आदि से सम्बंधित अनेक ग्रंथों का ज्ञानार्जन किया। आचार्य श्री जी के देवलोकगमन के पश्चात् सेवाभावी, शांतमूर्ति नूतन पट्टधर आचार्य श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वर जी म.सा. के पावन सान्निध्य में रहे। मुनि श्री इंद्रविजय के पास एक मुमुक्षु ने संयम जीवन अंगीकार किया जो इनके प्रथम शिष्य मुनि श्री ओंकारविजय जी बने। सूरत में मुनि श्री इंद्र विजय जी को गणि पद से अलंकृत किया गया। अब स्वतंत्र

रूप से कार्य करने में सक्षम होने के कारण शान्तमूर्ति आचार्य श्री जी आज्ञा प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि के परमार क्षत्रिय वंश में अहिंसा के प्रचार, सप्त व्यसन के त्याग एवं जीवन जीने की कला का कार्य बडौदा जिले के बोडेली से प्रारम्भ किया।

गणि श्री इन्द्रविजय जी ने कार्य क्षेत्र में अनेक बाधाएँ आने पर भी पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। जब बडौदा पंचमहाल जिले में हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था, सप्त व्यसन जन जन के जीवन पद्धति के अंग बन गये थे ऐसी स्थिति में गणि श्री जी ने समाज सुधार हेतु तन-मन से निर्भीक योद्धा की भाँति प्रस्थान किया। उस क्षेत्र में भक्तों ने इनको विचरण हेतु रोकते हुए कहा- हे गणि जी ! समस्याओं से ग्रसित इस क्षेत्र में सामान्य एवं वीर जन संसाधनों से युक्त होने पर भी जाने से कतराते हैं। आपके पास सुरक्षा के साधन नहीं हैं, अत: आप इस क्षेत्र में विचरण क्यों करना चाहते हैं ? इसके लिए भक्तों के साथ हुए प्रश्नोत्तर का संक्षेप में प्रत्युत्तर इस प्रकार हैं-

गणि जी ने कहा कि अहिंसा, शिक्षा एवं संस्कारों द्वारा व्यसनमुक्त जीवन जीने की कला सिखायी जायेगी। लोग व्यसन मुक्त जीवन जीयेंगे, तभी स्वस्थ समाज की रचना होगी।

यदि जनसमूह मारकाट, हत्या, शिकार आदि का त्याग करके अहिंसा के साथ व्यसन मुक्त जीवन जीते हैं, सादगी, संयम, सेवायुक्त जीवन जीते हैं, तो मेरी दृष्टि से वह अहिंसा का प्रत्यक्ष फल है। भक्तों ने कहा कि यह नैराश्यपूर्ण स्थिति है, अत: आप विचार छोड दीजिए।

गणि जी ने प्रत्युत्तर दिया कि निराशा में ही आशा के फूल खिलते हैं, इसके लिए आवश्यकता है असीम धैर्य के साथ निरंतर कार्य करने की। सच्चा सुख यदि कहीं है तो अहिंसा में है। सबसे प्रेम करने में है। फिर निर्णीत पथ पर आने वाली बाधाओं से क्या घबराना। यदि विधाता को इस क्षेत्र में कार्य करते हुए आमन्त्रण भेजना होगा तो मेरा महाप्रयाण भी सुखद होगा।

इस प्रकार आपने क्षत्रियोचित शारीरिक शक्ति, श्रमणोचित आत्मबल एवं व्यक्तित्व के ऊष्मा तत्व के द्वारा समाज में व्याप्त हिंसा, अंधविश्वासों एवं प्रगतिरोधक रूढियों को भस्मीभूत किया। प्रकाशतत्त्व से नवीन जीवन मूल्यों की पारदर्शी दृष्टि प्रदान की। जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी की भावना के मूर्तरूप बन आपने अपनी निष्काम सेवा, अदम्य पुरुषार्थ, ज्ञान गम्भीर्य, सूझबूझ, अद्भुत कार्यशैली से लगभग 12 वर्ष तक गुजरात में समाजोद्धार करते हुए नवीन इतिहास का एवं व्यसन मुक्त जीवन का धनी बनाते हुए भगवान महावीर के पथ का पथिक बनाया।

शताधिकै: संयमिभिर्जनैव मुमुक्षुभिधर्मपथैर्विनीत:।
सुमंदिराणीह कृतानि तावत् तत्प्रेरणासीच्च बलीयसी वै॥
विजयवल्लभचरितम् सर्ग 15- श्लोक 56।

आपके उपदेशों से असार संसार के स्वरूप को समझ कर मुमुक्षुओं ने संयम का जीवन अंगीकार किया। अनेकों गावों में जिन मन्दिर एवं पाठशालाएँ खोली गयीं। जैन धर्म के महान प्रचार कार्य एवं अद्भुत शासन प्रभावना के कारण गणि श्री इन्द्र विजय जी को शान्त मूर्ति आचार्य श्री विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज ने सन् १९७० में उन्हें वसंत पंचमी के दिन बम्बई में 'आचार्य पद'से विभूषित किया। कुछ वर्षों पश्चात् उन्हें अपना पट्ट घर घोषित किया। सन् १९७७ में राष्ट्र संत आचार्य श्री विजयसमुद्रसूरीश्वर जी म.सा. श्री संघ के संचालन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आप पर आ गयी।

सूरीश्वर श्री विजय: समुद्र:
प्राघोषयत् पट्टधरं मुनीन्द्रम् ।
श्री इन्द्र दिन्नमथ स्वीचकार'
तस्मिन् गते सो ऽधि च कार्यभारम् ।

विजयवल्लभ सूरि चरितम् दो बार बाईपास सर्जरी आपरेशन तथा समय-2 पर तीव्र शारीरिक वेदना होने पर भी तन में व्याधि मन में समाधित रखते हुए वे अविराम गति से चलते रहे। वे विश्राम नहीं करते थे कहते थे कि जब तक मेरे शरीर में संकेत है श्वास है तब तक हर पल मैं शरीर से काम लेना चाहता हूँ। यदि मैं सेवा करता हुआ देह त्यागूँगा तो मुझे प्रसन्नता होगी। मैं अपने जीवन को सार्थक मानूँगा।

समाजसेवा-भिरतो व्रजेयम्, ।
लोकादमुष्मादति इरित वाँच्छा
अविश्रमं चैव करोमि कर्म
लोकोपकारे मम सार्थकत्वम्॥
विजयवल्लभचरितम् सर्ग 15, श्लोक-57

आपके गुरु वल्लभ ने जो स्वप्न देखे, उनके जो कार्य अधूरे रह गये उनको इन्होंने ऊंचाइयों तक पहुँचाया।

समाज के उत्कर्ष एवं संगठन के प्रबल प्रयास किये। अगणित कष्ट सहन किए पर अपने कर्तृत्व का कभी अपमान नहीं किया। सधर्मिक फाण्ड की स्थान स्थान पर स्थापना करवाते हुए सहधर्मी भाइयों के दुःखों को दूर किया।

जब पंजाब आतंकवाद से पीड़ित था, दिनदहाड़े हत्या की जा रही थी, आवास की समस्या भीषण हो रही थी गुरुदेव के प्रवचन से प्रभावित होकर पंजाब के भामाशाह, दानवीर उद्योगपति श्री अभयकुमार जी ओसवाल ने लुधियाना में 8 एकड भूमि में 750 फ्लेट बनाकर इंद्रदिन्न नगर बसाया। साथ ही धार्मिक सामग्री, मंदिर, उपाद्रय, पुस्तकालय, स्कूल, समुदाय केंद्र आदि की सुविधाएँ उपलब्ध करवायी।

ऐसे मानवता के मसीहा, व्यसनमुक्ति अभियान के सूत्रधार आत्म-वल्लभ समुद्र पुष्पवाटिका के भारती तपस्वी सम्राट उन्होंने अनेकानेक भव्य प्रतिष्ठाएँ, अंजनशलाकाएँ, उपधान, छरिपालित संघ निकालने आदि अनेकानेक कार्य सम्पन्न किये।

करनवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ मेडता रोड पर संक्रान्ति के दिन शुभ एकादशी सं. 2057, 14 मई 2000 , रविवार को उन्होंने अपना पट्टधर कोंकण देश दीपक आचार्य श्रीमद् विजयरत्नाकर सूरीश्वर जी महाराज को घोषित किया। विजयवल्लभचरितम् के 15 वें सर्ग के 98 वें श्लोक में वर्णित-

विजय-इंद्रदिन्नस्तु स्वीयं पट्टधरं मुदा।
रत्नाकरं चकारासौ कोंकणदेशदीपकम्॥

निष्कर्ष: आचार्य श्रीमद् विजयइंद्रदिन्न सूरीश्वर जी ने मानव चिंतन के लिए नये क्षितिज खोले, मानव मन में नयी सम्भावनाएँ अंकुरित की। जीवन जीने के नये आयाम उद्घाटित किये। जन-जन को सही दिशा बोध देते हुए अनेक लोकोपकारी कार्य करते हुए अशुभ से शुभ, शुभ से शुद्ध का पथ प्रशस्त किया।